Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

सुभाषचन्द्र कुशवाहा के कथा –साहित्य में दलित–विमर्श

रेशमा त्रिपाठी
शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्व विद्यायल रीवा(मध्य–प्रदेश)

Article Info
Volume 4 Issue 6
Page Number: 43-49
Publication Issue :
November-December-2021
Article History
Accepted : 01 Dec 2021
Published : 10 Dec 2021

सारांश– कुशवाहा जी की कहानियों में दलित विमर्श, दलित चेतना लगभग जाति दंश से जूझती, पिसती, लिपटी हुई प्रतीत होती हैं जिस पर कुशवाहा जी ने अपनी कलम चलाई है।

मुख्य शब्द– सुबाषचन्द्र कुशवाहा, कथा, साहित्य, दलित, जाति, अभिव्यक्ति, समाज,राजनीति।

दलित विमर्श आज के युग का एक ज्वलंत मुद्दा हैं भारतीय साहित्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हो रही हैं। दलित साहित्य को लेकर कई संगठन भी बन चुके हैं और वह आंदोलन के रूप भी भी ले चुका है। स्वाभाविक रूप से साहित्य समाज और राजनीति पर इसका व्यापक असर पड़ा। इसी संन्दर्भ में कुशवाहा जी ने अपनी कहानी' भटकुइयां इनार का खजाना' में पानी जैसी बुनियादी जरूरत को पूरा करने के लिए किस तरह दलित समाज को उपेक्षा का शिकार होना पड़ा इसके जिक्र करते हुए लिखते हैं कि–'भटकुइयां इनार क्या भरा, दक्खिन टोला भरा गया हो जैसे लोग उदास हो गए, लड़के अनाथ, बेसहारा दिखने लगे, टोले में दूसरा इनार न था और बबुआन लोग अपने इनार पर न जाने देते। सो टोले वाले और उनके मवेशियों के लिए पास के सतुरहिया तालाब का पानी पीने के अलावा अन्य कोई विकल्प न था।' वहीं' फांस' कहानी में जमीनदार के धोखे और कर्ज लेकर किस तरह उसके गले की फांस बन जाती हैं इसका जिक्र करते हुए लिखते हैं कि–"गांव के गरीबों की गर्दन साहूकारों के गिरफ्त में होती हैं मंगरी की शादी में विनोद राय ने जो कर्ज दिया था, चौंवन्निया सूद के कारण बाईस हजार तक पहुंचा था। बीच –बीच में खेदन ने परबतिया और बच्चों द्वारा पाली–पोसी बकरियों को बेचकर कुछ चुकाया भी था। कर्ज की रकम बाईस हजार के पार –जाते ही विनोद राय ने तगादा शुरू कर दिया था। साहूकार अपने नफे नुकसान का अर्थ शास्त्र खूब जानते है उन्हें पता होता हैं कि कब तक चुप रहना चाहिए और कब तगादा शुरू कर देना चाहिए। और अंत में अमीन साहब जिंदगी के तमाम गड्ढे और खाइयों में गिरता –पड़ता रहा। खेदन का दिल जोर– जोर से धड़क रहा था उनकी आंखों के सामने अंधेरे का आवरण आ खड़ा होता ...वह कर्ज और मुक्ति की फांस में फंसा तड़प रहा था। कुशवाहा जी ने किसान ,खेती और भूख की जिस जर्जर स्थित का वर्णन किया है वह अंगेजों के शासन काल की नहीं अपितु वर्तमान भारत के दलित किसान समुदाय की है जिसे समझना उतना ही आवश्यक है जितना की किसान कि मौजूदा हालत को समझना। दलित की मुक्ति के सन्दर्भ में

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कंवल भारती का मानना है कि–"दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्र मुक्ति का प्रश्न है।'' डॉ अम्बेडकर पहले इतिहासकार हैं जिन्होंने इतिहास में दलितों को रेखांकित किया है यही कारण हैं कि दलित समाज उन्हें शंक्तिपुंज के रूप में स्वीकार करता है जिसका प्रभाव कुशवाहा जी के साहित्य में देखने को मिलता है। प्रगतिशील धारा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर प्रेमचन्द् के विषय में दलित चिंतकों का नजरिया हैं कि प्रेमचन्द् के रचना कर्म में दलित दयनीय स्थित में हैं पर उनमें विद्रोह बिल्कुल नहीं है वे अपने ऊपर अत्याचार करने वालों से डरे–सहमे रहते है उनके दलित पात्र धर्म जाल में जकड़े हुए हैं उनकी आस्थाएँ अंधी और अटूट है और वे इस सत्य से पूर्णतः अनजान है कि वे अंधी आस्थाएं ही उनकी दीनता तथा गरीबी के मुख्य कारण है वास्तव में प्रेमचन्द् के साहित्य में यही दलित–विमर्श,दलितों के कटु सामाजिक यथार्थ का दर्पण हैं जो क्रान्तिकारी है क्योंकि यह परिवर्तन की समझ विकसित करता हैं। प्रेमचंद् अपने दलित–विमर्श में इस तथ्य से बेखबर नहीं है कि दलित शिक्षा ही दलित मुक्ति का आधार है... प्रेमचन्द् जिस प्रगतिशीलता को लेकर चल रहे थे ,वह भले ही अम्बेडकर वादी न हो पर उसके निकट जरूर थी किन्तु प्रेमचन्द के बाद के बाद प्रगतिशील साहित्य में दलित–विमर्श की यह तेजस्विता नहीं मिलती। परवर्ती प्रगतिशील साहित्य में दलित वर्ग की उपस्थिति एक मजदूर वर्ग के रूप में है जिसका पूंजीवादी शासक वर्ग शोषण करता हैं, जिसके श्रम से वह अपने सुख की दुनिया बनाता है।(कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका) यही भाव कुशवाहा जी की कहानी–' यही सब चलेगा ?' में देखने को मिलता है जिसमें ओबीसी परिवार का लड़का आईएएस,पीसीएस बनना चाहता है तैयारी भी करता हैं किन्तु असफल हो जाता हैं। वह अपनी मां का दुलारा ,सामाजिक एवम् सरल स्वभाव का किन्तु अतिमहत्वाांक्षी हैं जिसे छोटी नौकरी पसंद नहीं और वह अपनी परिपाटी पर गर्व करने वाला है जो बाद में ओबीसी और दलित की गंदी राजनीति का शिकार हो जाता हैं जिसमें वह अपनी जमीन बेच देता हैं, समाज में उपहास का पात्र बन जाता हैं उसकी धीरे –धीरे महत्वाकांक्षा भी दब जाती हैं और अंत में वह धार्मिक कुचक्र और किस्मत पर आश्रित हो जाता हैं कारण यह है कि तैयारी में असफल हो जाता हैं, घूस नहीं दे पाता है वह 'महात्मा ज्योतिबा राव फुले उच्चतर माध्यमिक विद्यालय' खोलना चाहता है क्योंकि समाज कि राजनीति में यह नाम दलित का प्रतिनिधित्व करता हैं और वह ओबीसी हैं इसी को आधार बनाकर उसके सपनों को पंख लगने नहीं देते राजनीति के ठेकेदार। समाज की विडंबना यही है कि कोई अपनी जाति से इतर किसी अन्य जाति के संदर्भ में विचार–,कार्य करता हैं तो वह राजनीति का शिकार हो जाता हैं। कुशवाहा जी कहते भी है कि बिना पांव बढ़ाए रास्ते की कठिनाईयों का पता नहीं चलता,पानी में उतरे बिना तैरना नहीं आता। यही संकल्प लेकर विद्यालय खोलने का विचार तो कर लिया किन्तु जातिगत की गंदी राजनीति ने उसे भी अपने चपेट में ले लिया और अंत में वह भी अंधविश्वासी और कर्म कांडी बन गया। इसी तरह 'होशियारी खटक रही है' में कुशवाहा जी ने यह बताने का प्रयास किया कि किस तरह छोटे जाति के लड़के जब पढ़ लिख कर कुछ बन जाते है तो गांव के जमीदारों, उच्च वर्ग की जाति के लोगों की आंखों में खटकने लगते है कहानी में जिक्र करते हैं कि–'कोइरी काम हैं कोड़ार करना। भांटा उगाना। चले आए बिना नहाए? सब ससुरे पढ़ लिखकर कलेक्टर बनेंगे? कोई हलवाही–चरवाही नहीं करेगा ?कोई दरबार नहीं करेगा ? असल में यह सब मजदूरों और अनपढ़ों के बीच जातीय दंभ और तांडव का ताकत है। अमीरों का न सुधारना या बिगड़ैल होना संस्कृति बन गई हैं ये लोग आदमी मारते है और गऊ रक्षा का नाटक करते हैं ये लोग आपकी तरक्की नहीं देखना चाहते हैं ये हिन्दुओं को भी भड़काना चाहते है और मुसलमानों को भी। अफवाह फैलाए है कि इस्माइल मुसलमान होकर भी भठ्ठे पर कच्ची शराब बनवाते है। जातीय श्रेष्ठता धन –दौलत से बढ़कर है और वह

बैकवर्ड होने के साथ–साथ मुसलमान भी है बाबू साहब ने जिंदगी भर पढ़ाया–लिखाया पर गरीब को होशियार नहीं होने दिया ।उधर इस्माइल घर की ओर बढ़ रहे हैं इधर गांव में अंधेरा ही अंधेरा है। कुशवाहा जी स्वीकार करते हैं कि दरबारी करण पहले भी था आज भी है और आगे भी रहेगा। उसका कारण यह हैं कि दरबारी संस्कृति वाले तथा कथित समाज के लोगों ने ही विभिन्न जातियों और ऊँच–नीच में विभाजित कर समाज में अमानवीय वैचारिकी उत्पन्न की। आज भी जातिवादी समाज में जाति दंश पर प्रहार करने वाले सवर्ण समाज के बहुत कम लेखक दिखाई देते हैं जो अल्पसंख्यक, आदिवासी और जनजातीय मुद्दों पर चर्चा करते दिखाई पड़ते हैं। जाति दंश और सम्प्रदायिक धुव्रीकरण के विरूद्ध बहुत कम साहित्य रचा गया हैं जबकि इनकी मार से समाज का गरीब तबका जहालत की जिंदगी जीने को अभिशप्त है। जबकि आरएसएस एक सामाजिक संगठन हैं मगर वह खुले तौर पर राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हैं राजनीतिक एजेंडा कोई बुरी चीज नहीं होती बशर्ते उसने लोकतंत्रात्मक विधान हो और वह जनपक्ष धार हो या वह हाशिए के समाज की भलाई के लिए हो, वंचित समाज के साथ और कुलीन वाद के खिलाफ हो। कुशवाहा जी बुद्ध के विचारों के कायल है कि–'दुनिया में सबसे अधिक नफरत का सामना सच बोलने वालो को करना पड़ता हैं।

"अतुलित महिमा वेद की ,तुलसी किए विचार।
जेहि निंदित निंदित भए,परम बुद्ध अवतार।।"

वहीं 'डोम घाउच' और 'मलिकार की मार' कहानी में डोम परिवार के जीवन और दशा पर लिखी गई है इनके जीवन यापन का माध्यम मजदूरी और श्मशान पर मृतक शरीर के लिए आग देना हैं। इस कहानी में वें ठाकुरों और ब्राम्हणों से डर–डर कर गुलामी में जीवन यापन करते दिख रहे हैं। बेंचू, बुधी और सुरेश राम जैसे लोग तरक्की कर अपने समाज में आशा और ऊर्जा का संचार करने का प्रयास करते हैं किन्तु पूंजीपति ताकते अपने चाल चरित्र द्वारा उन्हें कमजोर कर देती हैं गाली और मार खाना उनके लिए कोई नई बात नहीं है ठाकुरों की ऊंची आवाज ही डोम डोली में खौफ उत्पन्न करने के लिए काफी है उनका जीवन इतने अभाव में होता हैं कि उनके मृतकों को जलाने के लिए बाबुओं को बमुश्किल एक टुकड़ी लकड़ी और एक बोझ सरपत मिल पाता बाकी कंडे और खर पतवार से ही जलाते। पण्डित पुरोहित तो उनके श्राद्ध –कर्म में जाते ही नहीं क्योंकि उन्हें डोम परिवार से मन मुताबिक दक्षिण नहीं मिलता, कुजात होने का खतरा उनके गले में फंसा रहता। वहीं 'अमीन मियां सनक गए हैं' कहानी में धार्मिक असमानता और जातीय भेद पर लिखी गई–"परसौली गांव में तीन टोला था उत्तर टोला में ठाकुर व भूमिहार, पश्चिम में तिवारी और दक्षिणी में दलित व मुसलमानों का त्रिकोण था। दक्षिण टोला में रहन– सहन सब कुछ साथ था। किन्तु शादी –ब्याह में खाने की अलग पंगत थी। पिछड़ी जाति की पंगत में दलित व मुसलमान बैठकर नहीं खा सकते थे। गैर दलित के बर्तन में मुसलमान भी खा सकते थे। न मुसलमान के बर्तन में हिन्दू । कुएं में पानी निकालने के लिए भी दलित और मुसलमानों का बर्तन दूर हटा दिया जाता था गैर दलित के पुरोहित तपेशर तिवारी थे किन्तु दलितों का पुरोहित कोई ना था अमीन मियां भले ही धर्म के मुसलमान थे किन्तु पिछड़े दलितों के घर–परिवार से उनके घर परिवार का संबंध अच्छा था कुंए के जगत पर हिन्दू–मुसलमान साथ–साथ बैठते थे। मुसलमान औरतें मांग में सिन्दूर ,माथे पर बिंदी ,पैरों में बिछिया पहनती तो हिन्दू औरतें मुहरम में रोजा रखती शाम को तीन चउरी प्रसाद बांटती सब कुछ ठीक था धीरे – धीरे समय बदला और नई पीढ़ी में वीरेंद्र प्रसाद सिंह अपने द्वार पर' हिन्दू युवा दल' कार्यालय खुलवा लिया। प्रभुनाथ तिवारी का पुत्र मुन्ना तिवारी अध्यक्ष बना और मुन्ना तिवारी दक्षिण टोला को मिनी पाकिस्तान कहा करते थे। फिर क्या था ?

देखते ही देखते देवी–देवता बदल गए , छूत–अछूत के भेद का विरोधी स्वर गूंजने लगा, दक्षिण टोले में होली के समय दीवारों पर लिखा गया कि–'जो हसन हुसैन को गाएगा, वह हिन्दू नहीं रह पाएगा।' गौरतलब है कि जब साहित्य में वर्ण वादी नजरिए का विरोध किया जाएगा ,तो उस नजरिए का भी विरोध किया जाएगा जो गैर दलितो को, दलित यथार्थ व्यक्त करने से रोके। प्रेमचन्द की रचनाओं में अस्पृश्यता की सघनता कम हो सकती हैं, पर उन चालाकी या दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया जा सकता उसी प्रकार जाति दंश की पीड़ा, उनकी अभिव्यक्ति की भाषा और मुहावरे को बहुजनवादी साहित्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए था। कुशवाहा जी के अनुसार–'जाति उन्मूलन का प्रश्न कम से कम पूरे हाशिए के समाज के बीच होना चाहिए एक सांस्कृतिक आंदोलन विकसित करने की जरूरत है जिसका नारा होना चाहिए–'मेहनत कश की एक जाति हो' हाशिए के समाज में व्याप्त सारे वर्णवादी संस्कारों को पहले तोड़ते हुए विकल्प के रूप में मेहनतकश समाज का एक संस्कार विकसित करना होगा। उसके बाद रोटी और बेटी की लड़ाई कार्यरूप में लानी होगी। हलाकिं यह आसन काम नहीं है, बहुत कठिन है मगर इसे अभियान के रूप में करना होगा। आपस में मिलने वाले दलितों, पिछड़ों या अल्पसंख्यकों के सामने नायक के रूप में लाते हुए विकसित किए गए सामाजिक संस्कारों में इन्हे अगुवे के रूप में सम्मानित करना होगा तब जाकर यह बदलाव सम्भव होगा।

'जो तर्क नहीं करेगा वह धर्मांध हैं, जो तर्क नहीं कर सकता वह मूर्ख है , जिसमें तर्क करने का साहस नहीं वह दास हैं।' डॉ अम्बेडकर की 1937 में प्रकाशित अपने उस भाषण की पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ पर इन पंक्तियों को दिया है जो भाषण उन्हें लाहौर के जात– पात के मंडल के लिए 'जाति का विनाश' शीर्षक से तैयार किया था जिस भाषण को उन्हें देने से रोका गया । इन पंक्तियों के लेखक सर विलियम ड्रमांडे

(1770–29मार्च 1828) हैं जो स्कॉटिश कूटनीतिज्ञ और संसद सदस्य के साथ कवि एवम् दार्शनिक भी थे। कुशवाहा जी की कहानियों में दलित –विमर्श इस बात की ओर इंगित करता हैं कि वह प्रगतिशील चेतना से ओत–प्रोत हैं सवर्णों के द्वारा शोषणकारी नीति व दमन के विरूद्ध जो आवाज उठाता है। वे उनके बीच दूसरे तरह के फायदे नुकसान में उलझाकर ,आपसी फूट कराकर उनकी शक्तियों को कमजोर करते हैं समाज में उनका चरित्र हनन करते है और उन्हें उनके ही लोगों के बीच पटक देते हैं तथा अपनी सत्ता की हनक कायम कर लेते है वे हिन्दुओं को जगाने वा भरमाने के लिए' हिन्दू युवा मण्डल' बनाते हैं और उसके माध्यम से ब्राम्हणवादी ,सामंतवादी नीति का प्रचार करते हैं वे दलितों व पिछड़ों के बीच जाते हैं। उन्हें अध्यात्म का पाठ पढ़ाते हैं ,अल्पसंख्यकों से खतरे गिनवाते हैं और उनके विरूद्ध उकसाते है और उनके भीतर आक्रोश पैदा करते हैं मन्दिर बनवाने के नाम पर चन्दा वसूलते है किन्तु कभी किसी पिछड़े या दलित जाति के व्यक्ति को मन्दिर समिति के अध्यक्ष या किसी बड़े पद नहीं बैठाते तथा चुनाव के समय उनके मसीहा बन जाते है। कुशवाहा जी ने सरकारी स्कुलों को दलितों को दलित बने रहने को बताया जिसमें 'ना उम्मीदी के बीच' कहानी संग्रह में कहते है कि– "मेरे समय के अधिकांश लड़के प्राइमरी पाठशाला तक पढ़ पाए थे कुछ लड़के हाई स्कूल तक, कुछ इंटर तक और केवल एक या दो विश्व विद्यालय स्तर तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद गांव की खेती –बाड़ी से जुड़ गए उस समय के सम्पन्न घर के एक दो लड़के ही आज कल शहरों में रहते हैं ।(हकीम सराय का आखिरी आदमी पृष्ठ 57)। पढ़ाई–लिखाई से नई चेतना और तार्किकता पैदा होती हैं। शिक्षा से समाज के एक तबके को आप महरूम कर देंगे तो वह अस्मिता विहीन

और स्वत्त्व विहीन ही होगा । उसे जिस तरह चाहे झांसे में आप फसां सकते हैं। जहां चाहें उसका इस्तेमाल भी किया जा सकता है।

मिड डे मील योजना भी लगभग गांव के दलित–पिछड़ों, बहुजनों को बड़ी चालाकी और मीठे जहर की तरह धीरे– धीरे पढ़ाई से विमुख करने की साजिश सी प्रतीत होती है। कुशवाहा जी की कहानियों में उनके हिसाब से यह योजना दो स्तरों से घटती हैं पहला तो यह कि पढ़ाई यहां गौण चीज हो जाती हैं शिक्षा से ज्यादा पहले पेट भरना जरूरी मान लिया हैं और दूसरा यह कि बावजूद इसके पेट भरना प्राथमिक हैं। मिडे डे मील कुल मिलाकर बच्चों में याचक पराश्रित करने का संस्कार पैदा करने वाली व्यवस्था प्रतीत होती हैं। बच्चों की संघर्ष चेतना को समाप्त करने का प्रयास भी यहां दिखाई देता हैं इस मामले में एक कमिनिगीरी यह कि गई कि सरकारी स्कूलों को सुनियोजित तरीके से सरकार के एजेंडे से बाहर किया गया। इन स्कूलों में चूंकि इन्हीं जातियों के बच्चे ही ज्यादातर पढ़ते हैं,सो धीरे–धीरे इन्हीं जातियों का स्कूल हो जाने दिया। हिंदी साहित्य में और भी कहानीकारों ने मिडे–डे मील पर कहानियां लिखी है जैसे कि (अल्पना मिश्रा की–छवनी में बेघर, ज्ञानपीठ 2008 पृष्ठ–२०–४३, इंदिरा गांधी द हीरो संपादक –मृत्युंजय पांडेय ,आंनद प्रकाशन कोलकाता–2019 पृष्ठ–151–64) इन कहानियों में इस योजना में व्याप्त भ्रष्टाचार और इसके राजनीतिक इस्तेमाल की चर्चा की गई है, यह भी इससे गरीब बच्चों का कम से कम पेट तो भर जाता हैं आदि।' ना उम्मीदी के बीच' कहानी में कुशवाहा जी लिखते हैं कि–दो साल से सरकारी स्कूलों में जाना शुरू किया है मुन्नी ने। पढ़ने नहीं खाने। अब सरकारी स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती ,खिचड़ी पकती है। एक स्कूल में एक मास्टर दिनभर 'मिड डे मील की खिचड़ी पकवाने ,खिलाने में लगे रहते हैं। पढ़ाने के लिए वक्त कहां मिलता हैं। मिड डे मील के लालच में मुन्नी कटोरा लेकर जाती और खेल खाकर लौट आती हैं। गरीबों को पढ़ने से ज्यादा पेट भरने का अर्थशास्त्र समझाया जा रहा हैं। आज दलितों का भला अच्छी शिक्षा होगा, मिड डे मील से नहीं। सरकारी स्कूलों में पढ़ाई तो होती नहीं, बड़े लोगों के बच्चे बाजार के निजी स्कूल में पढ़ते हैं और तुम्हारे बच्चे सरकारी स्कूल में खिचड़ी खाने जाते है। यह पढ़ाई का रिजर्वेशन नहीं तो क्या है? पूछो। अपने बच्चों से की क...ख.. ग भी याद है क्या ? इस पढ़ाई से हमारे बच्चे नरेगा मजदूरी के अलावा क्या करेंगे। सरकार तो चाहती हैं कि दलित गांव में रहे। आगे ना बढ़े। नरेगा इन्हीं के लिए हैं यही आशंका 'फांस' कहानी में सुरेश राय और विनोद प्रधान के शब्दों से प्रमाणित हो जाता कि जिसमें वे साफ कहते कि–'मिड डे मील की योजना कैसे बाबू लोगो के हित के लिए बनी है' इन शब्दों से तो मिड डे मील राजनीति बिल्कुल साफ हो जाती हैं–'विनोद राय गरीबों के बच्चों को गांव के सरकारी स्कूल में पढ़ते की हिदायत देते हैं। सोचते है कि गरीबों के बच्चे कस्बे के निजी स्कूल में पढ़ेंगे तो उनका दिमाग खराब हो जाएगा। गांव के स्कूल में पढ़ेंगे तो मिड डे मील खाएंगे ,जिंदगी भर मजदूर रहेंगे ,जी हुजूरी करेंगे। वह गांव वालो को समझाते भी है कि–'बच्चा पढ़े या ना पढ़े ,वजीफा मिलेगा, खाना मिलेगा और क्या चाहिए।' आगे कुशवाहा जी ने अपनी अन्य कहानियों के माध्यम से दलित स्त्री के साथ बलात्कार, बलात्कार के प्रयास की घटनाएं सरेआम होती हैं। उस पर पंचायत भी बैठती हैं लेकिन पंचों का फैसला एकतरफा और इतना पक्षपात पूर्ण होता हैं कि लोग आगे से कोई शिकायत करना भूल जाते है क्योंकि अक्सर बलात्कारी बाबू साहब में से ही होते हैं और पंचायत से लेकर पंचों के घरों तक उन्हीं का बोल बाला होता हैं तो उनकी मिजाजपोसी के अलावा चारा ही क्या है? यहां तक कि कहानी में दलित प्रधान कि पत्नी के साथ बलात्कार हो जाता हैं और बलात्कारी से पांच सौ का दंड भरवाकर उसे बरी कर दिया जाता हैं विचार करने का विषय है कि यदि प्रधान की पत्नी की इज्जत लूट सकती हैं तो फिर किस

की बचेंगी। इसी सन्दर्भ में एक और कहानी में–जहाँ एक ठाकुर का बेटा दुसाध जाति की एक नाबालिक लडकी के साथ बलात्कार करता हैं और गांव की पंचायत जब इस पर सुनवाई करती है तो ठाकुर के पुत्र को सौ रुपए के अर्थ दंड पर उसे बरी कर देती हैं तब लडकी का भाई रामप्रीत एक प्रतिरोधी प्रस्ताव रखता हैं कि–'चूंकि आप सब पंचों की राय से बलात्कार का दंड सौ रुपए हैं इसलिए मैं चाहता हूं कि मुझे एक बार ठाकुर साहब की जवान लड़की चन्द्रकला से बलात्कार की अनुमति दे दी जाए, मैं इस दंड की धनराशि को दंड स्वरूप ठाकुर साहब को लौटा रहा हूँ ।' यदि वास्तविक स्वरूप से इसे देखा जाय तो यह टिप्पणी आवश्यक थी स्त्री अस्मिता की कीमत सौ रुपए कितने शर्म की बात है कि जो अमूल्य हैं जिस पर जबरन पुरुषों का किसी भी रूप में अधिकार नहीं उसकी कीमत तय होती हैं। किन्तु बलात्कार का बदला बलात्कार का सिद्धांत मूलतरू स्त्री द्रोही मानसिकता की उपज हैं। अपितु वर्तमान समाज की विडंबना यही है कि स्त्री को एक व्यक्ति अस्मिता से ज्यादा उसे अपने घर,परिवार,समाज , जाति की 'इज्जत श के प्रतीक रूप में स्वीकार किया जाता हैं। जबकि जातिगत समीकरण के लिए एक स्त्री का इस्तेमाल पतन शील संस्कृति का सूचक हैं कुशवाहा जी की मनः स्थित के सन्दर्भ में विक्षोभ कुमार जी लिखते है कि–

"महाकाव्य से बड़ी विधा तो, शब्दों के बाहर हैं प्रियवर ।
जंगल आग बुझेगी कैसे, केवल कविता का जल लेकर ।।"

इसी सन्दर्भ में डॉ अम्बेडकर ने भी कई स्थानो पर कहा है कि–' दलित का उत्थान ,राष्ट्र का उत्थान हैं' दलित चिंतन में राष्ट्र समूचे भारतीय परिवार या एक कौम के रूप में है जबकि ब्राम्हणों में राष्ट्र इस रूप में मौजूद नहीं है उनके यहां एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना हैं, जिसमें सिर्फ द्विज है यहां न दलित हैं न पिछड़ी जाति और न अल्पसंख्यक वर्ग हैं इसलिए हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राष्ट्रवाद दोनों खंडित चेतना के रूप में है करोड़ों लोगो के लिए अलगाववाद का जो समाज शास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राम्हणों ने निर्मित किया था, उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था । इसलिए दलित विमर्श के केंद्र में वे सवाल हैं जिनका सम्बन्ध भेद भाव से है चाहे यह भेदभाव जाति के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर ही क्यों न हो ? दलित चिंतकों के अनुसार–'अतीत का लोकायत वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित जनता का धर्म था।' इसलिए दलित विमर्श का उनसे गहरा सम्बन्ध हैं उसने एक ऐसी विचार परम्परा को जन्म दिया जो वेद और वर्ण व्यवस्था विरोधी थी और परम्परा कालांतर में बौद्धों, नाथो, सिद्धों तक पहुंची। नवजागरण काल आते–आते प्रसिद्ध और पहला दलित विचारक भी हुए जो कि मराठी महात्मा ज्योतिबा फूले जी है उनकी प्रख्यात रचना–'गुलामगीरीश तथा उनके नाटकों और काव्य में पहली बार दलित समाज का दर्द यथार्थ रूप में व्यक्त हुआ । अम्बेडकर युग में दलित लेखकों में हीरा डोम का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है उनकी मात्र एक कविता–' अछूत की शिकायत' 1914में सरस्वती पत्रिका में छपी थी यह विशुद्ध दलित चेतना की कविता थी उसके बाद से ही दलित विमर्श पर आज तक अनेकानेक रचनाएं प्रकाशित हुई इसी क्रम में ग्रामांचल के कथाकार कुशवाहा जी कुशीनगर जोगिया पट्टी उत्तर प्रदेश का नाम भी बड़े गौरव के साथ लिया जाता हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में जैसे–हाकिम सराय का आखिरी आदमी, डोम घाउच , मलिकार की मार, जर जमीन जिन्नगी, एक बाकुम का मर जाना, बूचड़खाना, भटकुइयां इनार का खजाना, हुजी आतंकी जैसी कहानियों में दलित विमर्श और मिड डे मील,रमा चंचल हो गई हैं, रात के अंधियारे में जैसी कहानियों में दलित स्त्री शोषण, बलात्कार, भूख से मरता, लाचार किसान आदि विसंगतियां देखने को मिलती हैं। कुशवाहा कि कहानियों कि समीक्षा करते हुए लेखक 'संजीव जी' कहते है कि–'उत्तर प्रदेश के गांवों कि दलित, पीड़ित, शोषित भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी ,भाई चारे इत्यादि

को समझना हो तो ग्रामांचल के कथाकार कुशवाहा जी की कहानियों को देखे।' इंडिया टुडे ने 24 नवम्बर 2003 में लिखा कि–"भूमडलीकरण ने समस्याओं के वास्तविक रूपों को तिरोहित कर दिया है पुरानी सामाजिक दशाओं को वहीं छोड़कर यह समाज नई दिशाएं निर्मित करने लगा हैं कुशवाहा ,इस छूट गए और छोड़ दिए गए प्रश्नों के कथाकार हैं।'' इस तरह कुशवाहा जी की कहानियों में दलित विमर्श, दलित चेतना लगभग जाति दंश से जूझती, पिसती, लिपटी हुई प्रतीत होती हैं जिस पर कुशवाहा जी ने अपनी कलम चलाई है।

सन्दर्भ सूची

१–गांव के लोग द्वैमासिक पत्रिका (मार्च –अप्रैल 2021 अंक, सुभाषचन्द्र कुशवाहा पर एकाग्र)।
२–गांव के लोग द्वैमासिक पत्रिका (जनवरी –फरवरी 2021अंक, दलित विशेषांक)।
३–लाला हर पाल के जूते सुभाष चन्द्र कुशवाहा की कहानी संग्रह
४–होशियारी खटक रही है , कुशवाहा जी की कहानी संग्रह
5–बूचड़खाना , कुशवाहा जी की कहानी संग्रह
6–हाकिम सराय का आखिरी आदमी, कुशवाहा जी की कहानी संग्रह
7–लाल बत्ती और गुलेल, कुशवाहा जी की कहानी संग्रह